UGC CARE List (Arts and Humanities) RNI : UTTMUL00029 ISSN : 2347-9892

शोधप्रज्ञा

Śodha-prajñā

अर्द्धवार्षिकी, अन्ताराष्ट्रिया, मूल्याङ्किता, समीक्षिता च शोधपत्रिका

Biannual, International, Refereed / Peer Reviewed and
UGC CARE Listed (Arts & Humanities) Research Journal

वर्षम् - नवमम् अङ्कः - नवदशः दिसम्बरमासः - २०२२

प्रधानसम्पादकः

प्रो० दिनेशचन्द्रशास्त्री

कुलपतिः

सम्पादकः

डॉ. प्रकाशचन्द्रपन्तः

प्रकाशकः

उत्तराखण्डसंस्कृतविश्वविद्यालयः

हरिद्वारम्, उत्तराखण्डम्

Scanned with OKEN Scanner

क्रम सं.	विषय	नाम	पृष्ठ सं.
22.	वैज्ञानिक दृष्टि से गोधूलिलग्न की महत्ता	डॉ.रतनलाल:	130
23.	योगदर्शन एवं गीता में प्रतिपादित आन्तरिक विकास के सूत्र	डॉ. सरस्वती	136
24.	भर्तृहरिकृत 'नीतिशतक' का मानव-जीवन पर प्रभाव	डॉ. अनुरिषा	141
25.	संगीतिक शास्त्रों में नाट्यशास्त्र	डा. कुलविंदर कौर	145
26.	योगग्रंथों में यम-नियम विवेचन	किरण कुमार आर्य	151
27.	वैदिकवाङ्मय में सृष्टिविज्ञान	डा.कपिलदेव हरेकृष्ण शास्त्री	155
28.	गढ़वाली लोकगीतों में यथार्थ बोध	अनूप बहुखण्डी	164
29.	अग्निपुराण में नाटक निरूपण	पवन कुमार	171
30.	आयुर्वेद में प्रत्यक्ष प्रमाण का स्वरूप एवं उपयोगिता	सलोनी	174
31.	गाँधी के पर्यावरणीय चिन्तन की दार्शनिक विवेचना	डा. सरिता रानी	179
32.	योग आन्तरिक परिष्कार का विज्ञान	मनन जी, प्रो. मनुदेव बन्धु	184
33.	संस्कृत भाषा, साहित्य व मनोविज्ञान का सम्बन्ध	कु० मंजू पाण्डेय	190
34.	मृदुला सिन्हा के साहित्य में प्रेम के विविध स्वरूप	रीना अग्रवाल	195
35.	अष्टाध्यायी में पदाधिकार का स्वरूप एवं विषय	डा. रवीन्द्रकुमार:	198
36.	नादयोग संगीत का सामान्य जीवन पर प्रभाव	डॉ. शिवचरण नौडियाल	206
37.	कश्मीरी शैव कवयित्री लल्द्यद् एवं उनका 'वाखसाहित्य'	रमेश चन्द्र नैलवाल	213
38.	योग ग्रन्थों में वर्णित आहार की अवधारणा	डा. सरस्वती काला सन्दीप कुमार	219
39.	मनुस्मृति: मानवीय मूल्य का आधार	मीनाक्षी सिंह रावत	224
40.	वैदिक कालीन व्यावसायिक शिक्षा का आधुनिक स्वरूप	सुधा	229
41.	त्रिगुणात्मक प्रकृति एवं आहार द्वारा जीवन शैली प्रबंधन में श्रीमद्भगवद्गीता की भूमिका	लीलावती गुसाई डा. सुनील कुमार श्रीवास	235
42.	Legal Norms in "*NARADA SMRITI*" *vis a vis* Modern Laws in India:A Jurisprudential Analysis	Dr. Rajesh Kumar Dube	244
43.	Nāda Yoga in Haṭha Yogic Literature: An Analysis	Narpal Singh Prof. (Dr.) Surendra Kumar	250
44.	Natya or Theatre in the Light of Bharatmuni's Natyashastra	Dr Bharati Sharma	258
45.	Our *Pranic* Existence, *Prana-Spand* And Its Relationship With*Karma*-s	Prem Prabhu	263

Scanned with OKEN Scanner

योगदर्शन एवं गीता में प्रतिपादित आन्तरिक विकास के सूत्र

डॉ. सरस्वती
प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

स्थूल जगत् जिसे कि हम सब स्थूल चर्मचक्षुओं से प्रत्यक्ष कर सकते हैं, उस पर दृष्टिपात करने से तथा सामान्य रूप से विचार करने पर विदित होता है कि प्रत्येक स्थूल का आधार सूक्ष्म होता है अथवा इस तथ्य को इस प्रकार भी कहा समझा जा सकता है कि प्रत्येक कार्य के पीछे उसका कारण विद्यमान अवश्य रहता है। जो भी दृश्य दृष्टिगोचर हो रहा है उसके पीछे अदृश्य विद्यमान है। अदृश्य ही दृश्य की आधारशिला है। दिखाई देने वाला विशाल वट–वृक्ष, न दिखाई देने वाले बीज का परिणाम है। गगनचुम्बी विशाल भवन, न दिखाई देने वाली, विशाल भवन को धारण करने की क्षमता से युक्त, भूमि के गर्भ में विद्यमान नींव पर ही टिका हुआ है। मानव शरीर, परमपिता परमेश्वर की उत्कृष्टतम रचना है, जिसके विषय में भारतीय मनीषियों का कथन है– 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'। सदियों से वैज्ञानिक अथवा अन्य खोजी प्रवृत्ति के मनुष्य ब्रह्माण्ड के रहस्यों को जानने के लिए उत्सुक रहे हैं तथा निरन्तर प्रयोगशालाओं में अहर्निश कार्यरत हैं। यदि मानव शरीर को ईश्वर ने ब्रह्माण्ड की प्रतिकृति के रूप में निर्मित किया है तो अवश्य ही मानव शरीर की बाह्य एवं आन्तरिक संरचना को जानकर ब्रह्माण्ड के रहस्यों से अवगत हुआ जा सकता है। आयुर्विज्ञान ;डमकपबंस बपमदबमद्ध ने मानव शरीर की बाह्य संरचना के विषय में तो बहुत उन्नति की है परन्तु कारण को निर्मूल किए बिना बाह्य जानकारी के आधार पर किया गया उपचार स्थायी समाधान लेकर नहीं आता। आन्तरिक विकास के लिए आन्तरिक कारणों तक पहुंचना आवश्यक है। स्थूल भौतिक उपकरणों के माध्यम से आन्तरिक कारणों तक नहीं पहुंचा जा सकता।

भारतीय मनीषा इस तथ्य से भलीभांति अवगत थी अतः उन्होंने आन्तरिक कारणों तक पहुँचकर, आन्तरिक विकास के मार्ग को प्रशस्त करने के लिए आन्तरिक उपायों को, साक्षात् गुरु शिष्य परम्परा द्वारा तथा ग्रन्थ लेखन के माध्यम से सामान्य जनमानस को विकारों के विष से विषाक्त अन्तःकरण एवं बाह्य वातावरण से बाहर निकालकर अमृत पथ पर चलने का मार्ग उद्घाटित किया है। कोई भी भाषा न तो अच्छी है और न ही बुरी अपितु भाषा तो मात्र व्यवहार का माध्यम है परन्तु किसी भी भाषा में व्यक्त किए गए विचारों के कारण हम उसका मूल्यांकन करते हैं। यही कारण है कि हम संस्कृत भाषा को मानव के आन्तरिक विकास के लिए उपयुक्त मानते हैं क्योंकि जिस भारतीय मनीषा ने अन्तर्यात्रा के अनुभव किए उन्होंने अपने अनुभवों को संस्कृत भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त किया।

इस दृष्टि से अवश्य ही यह निःसंकोच कहा एवं स्वीकारा जा सकता है कि संस्कृत भाषा आन्तरिक विकास में सहायक हो सकती है। यदि हम केवल बाह्य विकास पर ही अपने आपको केन्द्रित रखेंगे तो वह सदैव अधूरा एवं अपूर्ण ही रहेगा और यदि केवल आन्तरिक विकास तक ही अपने आपको सीमित कर देंगे तो वह भी व्यावहारिक न होगा। आन्तरिक एवं बाह्य दोनों स्थानों पर जहाँ जितना आवश्यक है उतना ध्यान केन्द्रित करना ही होगा।[1] इस उभयविध सन्तुलित विकास को ईशोपनिषद् के ऋषि ने भी आवश्यक बताया है। केवल बाह्य विकास पर केन्द्रित होने से सुविधाएं तो जुटाई जा सकती हैं परन्तु सुखी नहीं हुआ जा सकता है। यदि बाह्य विकास से सुख प्राप्त किया जा सकता तो संसार का दृश्य ऐसा न होता जैसा कि आजकल दिखाई देता है। आत्महत्या और अवसाद वहाँ पर अधिक है जहाँ पर धन और सुख सुविधाएं अधिक हैं। हाँ आन्तरिक विकास सम्पन्न व्यक्ति धन वैभव एवं सुख सुविधाओं के अभाव में भी शान्ति एवं सुख का अनुभव करता है। इस विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि बाह्य एवं आन्तरिक दोनों ही विकास आवश्यक है पर यदि एक का चयन करना हो तो आन्तरिक विकास का ही चयन करना चाहिए जिसके बिना बाह्य विकास निरर्थक है।

संसार का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह धन कमाने में लगा हो, अथवा ज्ञान प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हो या अन्य भक्ति, योग, सेवा, साधना आदि में संलग्न हो सबका उद्देश्य सुख शान्ति को उपलब्ध होना ही है। दुख' और सुख' मिश्रित इस संसार यात्रा में किस प्रकार अपने आपको सन्तुलित रखकर सुखानुभूति की जा सकती है? इसके उपाय रूप में संस्कृत साहित्य में प्रतिपादित कतिपय बिन्दुओं पर विचार किया जा सकता है। उपनिषद् गीता एवं योगदर्शन में अनेक स्थानों पर चित्त शुद्ध करने के उपायों का वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम हम योगदर्शन के एक सूत्र के माध्यम से इस विषय को समझने का प्रयास करते हैं–

"मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातः चित्तप्रसादनम्।"[1]

सुखी, दुखी, पुण्यवान् और अपुण्यवान् व्यक्तियों के प्रति क्रमशः मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावना करने से चित्त प्रसन्न अर्थात् निर्मल होता है। निर्मलता शुचिता एक ऐसा गुण है, जिससे प्रत्येक प्राणी को प्रसन्नता का अनुभव होता है। इस विषय को सभी महापुरुषों ने अपने–अपने ढंग से अभिव्यक्त किया है। महात्मा गाँधी का वचन है कि "स्वच्छता में ईश्वर का निवास है"। वर्तमान भारतीय केन्द्र सरकार सभी नागरिकों को स्वच्छता के प्रति निरन्तर जागृत करने के लिए प्रयासरत है। स्वच्छता का यह बाह्य स्वरूप जितना आवश्यक है, आन्तरिक स्वच्छता उससे भी ज्यादा आवश्यक है। आन्तरिक स्वच्छता के अभाव में बाह्य स्वच्छता विद्यमान रहने पर भी सुख एवं शान्ति का अनुभव नहीं किया जा सकता।

आचार्य पतंजलि ने योगदर्शन के इस सूत्र में मनुष्यों को चित्त स्थिति के आधार पर चार भागों में विभाजित किया है। 1. सुखी, 2. दुखी, 3. पुण्यवान् और 4. अपुण्यवान्। चार प्रकार के मनुष्यों के लिए चार उपाय अर्थात् सुखी मनुष्यों के साथ मित्रता, दुखी मनुष्यों के प्रति करुणा, पुण्यवान् मनुष्यों के साथ मुदिता अर्थात् हर्ष, अपुण्यवान् मनुष्यों के साथ उपेक्षा का व्यवहार करना चाहिए। इस प्रकार के व्यवहार का अभ्यास करते–करते वह जीवन का अंग बनकर सांसारिक द्वन्द्वों में सहजतापूर्वक जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक सिद्ध होगा। इस विषय को उदाहरणपूर्वक समझने का प्रयास करते हैं।

सुखी लोगों को देखकर जिनसे हमारा कोई स्वार्थ पूरा नहीं होता सामान्यतः हम ईर्ष्यानुभूति करते हैं। परिणामस्वरूप जन्म जन्मान्तर की यात्रा के संयोग से चित्त में विद्यमान ईर्ष्या के संस्कार, वर्तमान जीवन में की जाने वाली ईर्ष्या से पुष्टि पाकर प्रबल से प्रबलतम होते जाते हैं। इसी प्रकार अपने शत्रु को दुख में देखकर हम हर्षित हो जाते हैं। इस प्रकार के आचरण से निष्ठुरता और कठोरता के संस्कार बल ग्रहण करके स्थायित्व को उपलब्ध हो जाते हैं। आन्तरिक विकास और निर्मलता तो पूर्व संचित संस्कारों को क्षीण करने से ही होना संभव है। पूर्व संचित संस्कारों को क्षीण करने के दो उपाय पातंजल योगसूत्रों में प्रतिपादित हैं। प्रथम तो समाधि में जाकर उनका क्षय किया जाए। द्वितीय प्रारब्ध को ईश्वरीय न्याय व्यवस्था में अपने ही किए कर्मों का परिणाम जानकर तथा बिना विचलित हुए प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करके व्यवहार के माध्यम से संचित संस्कारों का क्षय किया जाए। प्रथम उपाय जन सामान्य के लिए श्रम साध्य एवं कठिन है। द्वितीय उपाय के रूप में प्रतिपादित सुखी मनुष्यों से ईर्ष्या न करके ऐसी प्रसन्नता एवं सुख का अनुभव करें जैसे कि अपने पुत्र या मित्र की उन्नति में करते हैं। ऐसा करने से जहां इस समय मन मलिन होने से बचेगा वहीं पूर्व संचित संस्कारों को बल न मिलने से दुर्बल होकर क्षयोन्मुख हो जायेंगे। इसी प्रकार शत्रु को दुख में देखकर निष्ठुर हर्ष का अनुभव न करके करुणा के भाव को प्रकाशित करना चाहिए। शत्रु को दुख में देखकर यदि निष्ठुर हर्ष उमड़ता है तो पूर्व संचित निष्ठुरता के संस्कार प्रबल होकर हृदय की संवेदनशीलता जो कि मनुष्य होने की प्रमुख अर्हता है, नष्ट होकर मानव को चेतन से चैतन्य होने के बजाय जड़ता की ओर अग्रसर करेगी तथा इससे बढ़कर अन्य कोई भी हानि मानव के लिए नहीं हो सकती। शत्रु को दुख में देखकर हृदय में करुणभाव के उदय होने से वर्तमान में तो मन निर्मल रहेगा ही, साथ–साथ निष्ठुरता के पूर्व संचित संस्कार भोजन प्राप्त न करने से क्षयोन्मुख अवश्य होंगे।

हम मनुष्यों ने अपने को मतों, सम्प्रदायों में विभाजित किया हुआ है एवं उनके कुछ मन्तव्य, सिद्धान्त निर्धारित कर रखे हैं और जो उनके अनुसार चलता है, उसको देखकर हम प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

हमसे भिन्न सम्प्रदाय के व्यक्ति को यदि वह पुण्यकर्मा है तब भी उसके प्रति क्रोध और ईर्ष्या के भाव आते हैं जो कि मानवचित्त को मलिन करके दुख का कारण बनते हैं। आचार्य पतंजलि के अनुसार चाहे सधर्मी हो या विधर्मी, यदि वह पुण्यकर्ता है तो उसके प्रति प्रसन्नता का अनुभव करके, उसके प्रति कम तथा अपने चित्त को मलयुक्त होने से बचाने के कारण अपने प्रति महान उपकार होता है, क्योंकि किसी के प्रति जब कोई ईर्ष्या या हिंसक भावों का प्रयोग करता है तो सामने वाले को हानि पहुँचाने से पहले उसकी अपनी अत्यधिक हानि हो जाती है। किसी को जलाने के लिए पहले स्वयं जलना पड़ता है। दूसरों के अपुण्य अर्थात् दोषों की उपेक्षा भाव चित्त शुद्धि का उपाय है। उपेक्षा उदासीनता अपने आप में कोई भाव नहीं है अपितु दोषयुक्त व्यक्ति के प्रति ईर्ष्या, घृणा आदि विपरीत भावों का उदय न होना ही उपेक्षा अर्थात् उदासीनता है।

आन्तरिक विकास अर्थात् चित्त (मन, बुद्धि, अहंकार, स्मृति कोष, हृदय) की निर्मलता का सम्पादन करके उसे विकास के द्वारा उच्चतम क्षमता प्रदान करना है। चित्त की निर्मलता के पश्चात् उस चेतन सत्ता का साक्षात्कार करके ब्रह्माण्ड के रहस्यों से अवगत होकर अपने इस जीवन को प्राप्त करने के उद्देश्य से परिचय प्राप्त कर उस दिशा में निरन्तर अग्रसर होते रहना है। चित्त में हृदय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। चिकित्सा विज्ञान जिस हृदय के विषय में ज्ञान प्राप्त कराता है, यहाँ पर उस हृदय की चर्चा नहीं की जा रही अपितु जिस हृदय से चिकित्सा विज्ञान अपरिचित है तथा जिसका दर्शन योगियों ने योग साधना के माध्यम से किया है तथा जिसके विषय में यजुर्वेद के शिवसंकल्प सूक्त में वेद का ऋषि कहता है, कि मन को हृदय में प्रतिष्ठित होना चाहिए।[5] कठोपनिषद् के ऋषि ने उस हृदय स्थान में आत्मा के स्थित होने का उल्लेख किया है।[6] हृदय का स्वरूप है उदारता, विशालता, संवेदनशीलता, क्षमाशीलता। जब निरन्तर राग द्वेष से प्रेरित होकर मोहान्धकार से कलुषित, आसक्तियुक्त सकाम कर्म किए जाते हैं तो प्राकृतिक नियमानुसार कृत प्रणाश न होने से केवल उसका अदर्शन हो जाता है[7] तथा सूक्ष्म संस्कारों के आवरण हृदय को आच्छादित करते रहते हैं। आवरणों की परतों पर परतें जमा होती चली जाती हैं। हृदय संकुचित से संकुचिततम होता चला जाता है। परिणामस्वरूप जो आज के जनमानस का संकुचित हृदय से प्रसूत व्यवहार सर्वत्र दिखाई दे रहा है। एक व्यक्ति ने जो अपनी एक विचारधारा बना ली, वह सबको उसी के अनुसार चलता हुआ देखना चाहता है। अपने से भिन्न किसी अन्य की सोच का उसके लिए कोई महत्त्व नहीं होता यदि कोई उसकी विचारधारा के विपरीत आचरण करता है तो वह हिंसात्मक व्यवहार करने में भी संकोच नहीं करता। संकुचित हृदय वाला व्यक्ति क्रूर शासक की तरह सबको अपने अनुसार चलाना चाहता है। जैसा भोजन मैं करता हूँ, वैसा ही सब करें। जैसे और जिस प्रकार के वस्त्र मुझे पसन्द हैं, वैसे ही सब पहनें। जो पूजा पद्धति मैं अपनाता हूँ, सब वैसा ही मेरा अनुसरण करें। प्रतिप्रसव क्रिया में जब अपने दोषों के प्रति जागृति उत्पन्न होती है तो प्रभु कृपा एवं सक्षम गुरु के आशीर्वाद से हृदय के ऊपर से आवरण उतरते जाते हैं एवं हृदय शुद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाता है तो **"उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्"**[8] चरितार्थ हो जाता है अन्यथा तो भाषण में प्रयोग होने वाली सूक्ति मात्र ही होती है।

आत्मा परमात्मा का अंश है तो उसमें परमात्मा के गुण होना भी स्वाभाविक है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत–भारती में एक स्थान पर इस तथ्य को इस प्रकार उद्घाटित किया है–

क्या कार्य दुष्कर है भला यदि इष्ट हो हमको कहीं,
उस सृष्टिकर्त्ता ईश का ईशत्व क्या हममें नहीं।
यदि हम किसी भी कार्य को करते हुए असमर्थ हैं,
तो उस अखिलकर्ता पिता के पुत्र ही हम व्यर्थ हैं।।[9]

आत्मा को शरीर इन्द्रियाँ एवं अन्तःकरण आदि उपकरण संसार यात्रा को सुगमतापूर्वक संचालित करने एवं निरन्तर जागृत रहते हुए उनका विकास करके उच्चतम लक्ष्य अपने नित्य आनन्द स्वरूप को उपलब्ध होने के लिए हैं। जिस प्रकार परम–पिता परमेश्वर सभी प्राणियों पर चाहे वे मनुष्य हों अथवा मनुष्येत्तर प्राणी अनुग्रहपूर्वक, प्रेमपूर्ण एवं कल्याणभाव से युक्त रहते हैं। ऋतविधान एवं न्यायव्यवस्था के अन्तर्गत रहते हुए सभी प्राणियों को उनके कर्मों का यथोचित फल प्रतिक्रिया से मुक्त रहकर प्रदान करते हैं, यदि हम सब

Scanned with OKEN Scanner

प्रतिक्रिया से मुक्त होकर तथा कल्याण भाव से युक्त होकर सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करें तो आन्तरिक विकास की प्रक्रिया सुगमतापूर्वक सम्पन्न हो सकती है। इस आन्तरिक विकास की प्रक्रिया का सहज और सुगम सूत्र महर्षि वेदव्यास ने महाभारत की युद्धभूमि में श्रीकृष्ण के मुख से अर्जुन को प्रदान किया है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफल हेतुर्भू मा ते संगोऽस्वकर्मणि।।[10]

आन्तरिक और बाह्य जो कुछ भी दृश्य अथवा अदृश्य है सबका मूल कारण कर्म ही प्रतीत होता है। कोई भी कर्म एक प्रकार से करने पर बन्धन का कारण बन जाता है तथा वही कर्म भिन्न प्रकार से करने पर बन्धनों को खोलने का कारण बन जाता है। सांसारिक व्यवहार परम्परा में आज किया जाने वाला कर्म ही कल प्रारब्ध बनकर आने वाला है। राग–द्वेष एवं प्रतिक्रिया के माध्यम से किया जाने वाला कर्म जहाँ बन्धन का हेतु बनता है वहीं राग द्वेष एवं आसक्ति के आवरणों से आत्मा एवं चित्त के सहज स्वरूप को आवृत कर लेता है।

कर्म के महत्त्व को उद्घाटित करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, कर्म के परिणामों पर कभी भी नहीं, अतः तू अपने आपको कर्मफल का कारण मत बना और अकर्म के साथ भी तेरी आसक्ति न हो। गीता के दूसरे अध्याय में पठित इस श्लोक के रहस्य को न समझ पाने के कारण कुछ लोग भ्रमवश ऐसा मान लेते हैं कि फलप्राप्ति के बिना कोई भी व्यक्ति कर्म करने में क्यों प्रेरित होगा तथा इस प्रकार लोग अकर्मण्य हो जायेंगे। गीता का यह श्लोक यह बिल्कुल नहीं कहता कि कृत कर्म का फल प्राप्त नहीं होगा अपितु यह कहता है कि फल प्राप्त करने में तेरा अधिकार नहीं है, कर्म करने में ही तेरा अधिकार है। इस तथ्य को हम एक लौकिक उदाहरण के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं। जिस प्रकार परीक्षा में बैठा हुआ विद्यार्थी अपनी उत्तर–पुस्तिका पर क्या लिखे और क्या न लिखे, इस विषय में उसका पूरा अधिकार है। परीक्षक उसे कुछ भी लिखने और न लिखने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। उत्तर लिखने में पूरा अधिकार होने पर भी उनको जाँच कर परिणाम प्राप्त करने में उसका अधिकार नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि जो भी उसने लिखा है, उसका परिणाम उसे प्राप्त नहीं होगा। ठीक इसी प्रकार कर्म करने में हम स्वतन्त्र होकर भी परिणाम प्राप्ति में परतन्त्र हैं। इस पंक्ति से कोई कर्म न करने का आशय ग्रहण न कर ले अतः श्रीकृष्ण कहते हैं कि अकर्म अर्थात् कर्म न करने में भी तेरी आसक्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से अकर्मण्यता के संस्कार संचित होकर वही आवागमन के बन्धन का कारण बन जायेंगे। अभी तक कर्म से संबन्धित प्रश्न जहाँ का तहाँ विद्यमान है अर्थात् कर्म करने की वास्तविक विधि क्या है, इस प्रश्न के उत्तर के रूप में श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! तू अपने आपको कर्मफल का हेतु मत बना। 'मा कर्मफल हेतु भू इस पंक्ति के आशय को और थोड़ा विस्तार से, उदाहरणों के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं। जब हम किसी भी कार्य को करते हैं तथा हमारा ध्यान उस कार्य के फल पर केन्द्रित हो जाता है तो जो हमारी सम्पूर्ण ऊर्जा कार्य पर व्यय होनी चाहिए थी वह दो जगह विभाजित हो जाती है इससे कार्य की गुणवत्ता कम हो जाती है और परिणाम तो कार्य की गुणवत्ता के आधार पर ही निर्भर है। इब बात को हम इस प्रकार समझ सकते हैं जब कोई व्यक्ति किसी पद प्राप्त्यर्थ साक्षात्कार के लिए जाता है तथा उसकी सम्पूर्ण चेतना उस पद प्राप्ति पर केन्द्रित हो जाती है तो भय और चिन्ता के कारण साक्षात्कार के अवसर पर वह पूर्वस्मृत तथ्यों को भूल जाता है, परिणामस्वरूप जो पद उसे मिल सकता था, साक्षात्कार अच्छा न होने के कारण मिलने से रह जाता है। इसलिए श्रीकृष्ण कहते हैं कि कार्य कीजिए पर कार्य के फल से अपने को पृथक् रखिए। यदि कर्म इस विधि से किया जाता है तो उसका परिणाम, फल पर चेतना केन्द्रित किए गए कर्म के परिणाम से कई गुना अच्छा होगा।

कर्मफल का हेतु न बनने से अभिप्राय है कि कर्ताभाव से मुक्त होकर, आसक्ति एवं मोह से मुक्त होकर, अहंकार से मुक्त होकर कर्म करना ही कर्मफल का हेतु न बनना है। जब हम किसी कर्म को कर्ताभाव से करते हैं तो कर्तृत्व के कारण हमारा उस कर्म के साथ बन्धन बन जाता है। उस बन्धन के कारण हमें पुनः पुनः उसके भोग के लिए भटकना होता है। इस प्रकार यदि कर्मों को फल की कामना से मुक्त होकर, समर्पित होकर, क्रीड़ा भाव से किया जाए तो उससे प्रारब्ध क्षय भी सहजता से सम्पन्न होगा तथा

भविष्यत्कालिक बन्धनों से भी मुक्ति मिलेगी। इस विधि से किए गए कर्म आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के विकास में सहायक होंगे।

योगदर्शन एवं गीता में प्रतिपादित इन तथ्यों के विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि मैत्री, करुणा, मुदिता आदि सर्वसमाज में स्वीकृत गुणों के द्वारा जिन गुणों को न केवल मनुष्य नामक प्राणी पहचानता है अपितु मनुष्येतर पशु पक्षी जगत् भी जिसको पाकर आह्लादित होता है, उनके आधार पर प्रतिक्षण जागृत रहकर व्यवहार करते हुए शनैःशनैः चित्त के सन्तुलन को उपलब्ध हुआ जा सकता है।

गीता में प्रतिपादित कर्म के मर्म को हृदयंगम करके जहाँ प्रारब्ध को सहजतापूर्ण भोगने का सामर्थ्य उपलब्ध होगा वहीं नवीन बन्धनों का निर्माण न होने से समत्व को उपलब्ध होकर आन्तरिक विकास अर्थात् नित्य आनन्द और शान्त स्वरूप जो कि अज्ञान के आवरणों से आवृत हो चुका था, पुनः अपने निज स्वरूप में विकसित हो सकेगा।

संदर्भ सूची

1. विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
   अविद्यया मृत्यं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।। (ईशोपनिषद)
2. अनुकूल वेदनीयं सुखम्
3. प्रतिकूल वेदनीयं दुःखम्
4. योगदर्शन, समाधिपाद, (सूत्र संख्या–33)
5. सुसारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
   हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। (यजुर्वेद शिवंकल्प सूक्त, मन्त्र–6)
6. अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।
   ईशानो भूतभव्यस्य ततो विजुगुप्सते।। (कठोपनिषद् द्वितीय अध्याय, प्रथमवल्ली, मन्त्र–12)
7. णश् अदर्शने। (धातु पाठ दिवादिगण)
8. महोपनिषद् (अध्याय–4, श्लोक–71)
9. भारत भारती (भविष्यत् खण्ड, पद्य–12)
10. गीता, (अध्याय–2, श्लोक–47)

*****

Scanned with OKEN Scanner

॥ ओ३म् ॥

ISSN- ०९७६-८०१७ & UGC Care listed (No. १११)

गुरुकुल-पत्रिका

(प्राच्यविद्याओं की त्रैमासिकी मूल्याङ्कित शोध-पत्रिका)

अङ्क ७३/४ एवं ७४/१ (संयुक्ताङ्क) अप्रैल - सितम्बर, २०२२

सम्पादक

प्रो० (डॉ०) विनय कुमार विद्यालङ्कार
प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
संकायाध्यक्ष, शिक्षा एवं प्रशिक्षण संकाय
दूरभाष - ७९०६७२५६८८, ९४१२०४२४३०
E-Mail : gurukulpatrika@gkv.ac.in

गुरुकुल काङ्गड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार - २४९४०४

Scanned with OKEN Scanner

अनुक्रमणिका

१. वेद एवं महर्षि दयानन्द की दृष्टि में योगदर्शनोक्त प्राणायाम का स्वरूप	प्रो० सोमदेव शतांशु	१-५
२. उपनिषदों का वैश्विक परिदृश्य : आत्मा के सन्दर्भ में	प्रो० सुधीरकुमार	६-११
३. संस्कृतव्याकरणे लोकव्यवहार:	प्रो० ब्रह्मदेव	१२-१७
४. आचार्य शंकर का सामाजिक चिन्तन	प्रो. व्रजेश कुमार पाण्डेय, डॉ. विवेक कुमार शुक्ल	१८-२६
५. उत्तर भारतीय प्रमुख चामुण्डा प्रतिमाओं का कला में निरूपण : एक अध्ययन	प्रो० प्रभात कुमार, कल्पना देवी	२७-३५
६. कविवर दयानन्द का काव्य और काव्यशास्त्रीय ऊहा	डॉ. अभिमन्यु	३६-४३
७. ताद्धित भावकर्मार्थ प्रत्ययों का समालोचनात्मक अध्ययन	डॉ. कर्मवीर आर्य	४४-५३
८. लौकिक न्याय एवं व्याकरण शास्त्र	अवनीश कुमार	५४-६६
९. शृङ्गाररस की शास्त्रीय समीक्षा	प्रो. विनय कुमार, डॉ.मौहरसिंह	६७-७६
१०. 'विक्रमबेताल पञ्चविंशति' की द्वितीय कहानी का दार्शनिक विवेचन	डॉ. सरस्वती	७७-८३
११. भारतीयज्ञानपरम्परा	डॉ. सुशील कुमारी	८४-९२
१२. अष्टाध्यायी संरचना पद्धति का वैशिष्ट्य	प्रभात कुमार	९३-१०१
१३. विद्यालय शिक्षा में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता	डॉ. संदीप कुमार उपाध्याय	१०२-१०९
१४. शब्दब्रह्म-सायुज्य-मोक्षमीमांसा	सचिन	११०-११४
१५. कालिदाससाहित्ये तप:स्वरूपम्	डॉ. विजयलक्ष्मी:	११५-१२१
१६. व्याकरणशास्त्रस्य दर्शनत्वम्	डॉ. रवीन्द्रकुमार:	१२२-१२७
१७. मन्त्राणाम् अर्थानुशीलने सम्प्रयोगे च ऋषिदेवताछन्दसाम् उपादेयत्वम्	डॉ० वेदव्रत:	१२८-१३३
१८. The Gita- the healing Holy Book and Chanderkant in Campus: Predicaments of Vice-Chancellor	Prof. Ambuj Sharma, Dr. Parnav Kumar Vaidik	१३४-१४०
१९. Impact of Maternal Employment on Self Concept of School Going Adolescents	Dr. Shyam Lata Juyal	१४१-१५८

Scanned with OKEN Scanner

'विक्रमबेताल पञ्चविंशति' की द्वितीय कहानी का दार्शनिक विवेचन

डॉ. सरस्वती[१]

जड़-चेतन, दृश्य-अदृश्य, साकार-निराकार, स्थूल एवं सूक्ष्म के संयोग से निर्मित इस संसार के रहस्य को साक्षात्कार करने के लिए भारतीय मनीषा सदैव प्रयत्नशील रही है तथा अपने अनुभवों को सभी मनुष्यों तक पहुँचाने के लिए श्रुत परम्परा एवं लेखन परम्परा को आधार बनाया है। व्यष्टिरूप सभी आत्माएं समष्टिरूप परमात्मा का ही अंश हैं। वेदान्त की चरम परिणति स्वरूप उपनिषदों में परब्रह्म के स्वरूप को दृश्यमान जगत् के विभिन्न उदाहरणों द्वारा परिभाषित करने के प्रयास में तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा है-"**रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वार आनन्दी भवति।**"[२] अर्थात् परमात्मा रसस्वरूप है तथा सभी आत्माएं उस परमात्मा का अंश होने के कारण उनको भी रसरूप एवं परमानन्द में स्थित होना चाहिए परन्तु अधिकतर आत्माएं जगत् के स्थूल रूप को ही सर्वस्व मानकर जड़ता के निरन्तर साहचर्य से अपने चेतनस्वरूप को विस्मृत कर जड़ता के संस्कारों एवं आवरणों से आच्छादित होकर दुःख का ही अनुभव करती रहती हैं। अशान्ति उद्विग्नता एवं दुःख के आवरणों एवं भ्रान्तियों को निर्मूल करके अपने आनन्दस्वरूप को पुनः कैसे उपलब्ध हों इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए आप्तपुरुषों ने अपने अनुभवों को साहित्य-सृजन के रूप में सामान्य जनमानस तक पहुँचाने का महनीय कार्य किया तथा साहित्य को मानव-जीवन के उत्कर्ष के लिए आवश्यक बताते हुए साहित्य संगीत एवं कलाविहीन व्यक्ति को पशु की संज्ञा प्रदान की है- **साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुपुच्छविषाणहीनः। तृणं न खादन्नपि जीवमानः तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।**[३] काव्य-शास्त्र की उद्गम एवं विकास परम्परा पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि वेद से प्रारम्भ करके अद्यावधि क्रियाकल्प[४], अलंकार-शास्त्र[५], सौन्दर्य-शास्त्र[६], काव्य-शास्त्र[७] एवं साहित्य-शास्त्र[८] नाम से अभिहित साहित्य का अनेक दृष्टियों से वर्गीकरण किया गया है। स्वरूपविधान की दृष्टि से काव्य के पाँच भेद किए गए हैं-१. महाकाव्य, २. रूपक, ३. आख्यायिका, ५. कथा तथा ५. मुक्तक। इन पाँच प्रकारों में जो कथा नामक भेद हैं उसकी परिभाषा करते हुए साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ कहते हैं-

कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्।

---

१ एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, जाकिर हुसैन दिल्ली कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, दूरभाष- ९७१७७४१७६५, ईमेल- saraswatizhdc@gmail.com

२ तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्दवल्ली, सप्तम अनुवाक्

३ भर्तृहरि, नीतिशतक, श्लोक-२

४ वाल्मीकि रामायण ७.९४.७, क्रियाकल्पविदश्चैव तथा काव्यविदो जनान्।

५ प्रतापरुद्रीय टीका, यद्यपि रसालंकाराद्यनेकविषयमिदं शास्त्रं तथा छत्रिन्यायेन अलंकारशास्त्रं उच्यते।

६ काव्यालंकार, अधिकरण-१, सूत्र-२, सौन्दर्यमलंकारः। काव्यालंकार, अधिकरण-१, सूत्र-१, काव्यं ग्राह्यमलंकारात्।

७ सरस्वतीकण्ठाभरण-२.१३९, काव्यं शास्त्रेतिहासौ च काव्यशास्त्रं तथैव च। काव्येतिहासः शास्त्रेतिहासस्तदपि षड्विधम्।।

८ काव्यमीमांसा, अध्याय-२, पृष्ठ १०, पञ्चमी साहित्यविद्येति यायावरीयः। सा च चतसृणामपि विद्यानामपि निष्पन्दः।

Scanned with OKEN Scanner

क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम्।[९]

विस्तृत कथा का संक्षिप्त रूप ही कथानिका अथवा कहानी है। वेद, व्याकरणदि शास्त्रों को समझने के लिए जहाँ विकसित प्रौढ़, सामर्थ्य सम्पन्न मस्तिष्क की आवश्यकता होती है, वहीं कहानी के माध्यम से क्रीड़ा करते हुए कोमलमति बालकों एवं सीमित बौद्धिक क्षमता सम्पन्न व्यक्तियों को भी सरलता से तत्त्व ज्ञान करवाया जा सकता है। इसी तथ्य को विशद करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने काव्य के प्रयोजन में इस प्रकार इंगित किया है-**"चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि"**[१०] अर्थात् स्वल्प बौद्धिक क्षमतावान् व्यक्तियों को भी सरलता से धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्त्यर्थ काव्य का सृजन एवं अनुशीलन करना चाहिए।

सोमदेव भट्ट द्वारा विरचित कथासरित्सागर कहानी साहित्य का मूर्धन्य ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की रचना सोमदेव ने कुल्लू कांगड़ा (त्रिगर्त) के राजा की पुत्री एवं कश्मीर के राजा अनन्त की पत्नी सूर्यमती के मनोविनोदनार्थ ईस्वी १०६३ और १०८१ के मध्य की। यह ग्रन्थ वर्तमान रूप में छोटी-छोटी कहानियों का संग्रह है तथा पैशाची भाषा के माध्यम से गुणाढ्यकृत "बृहत्कथा" का सार संग्रह है। इस तथ्य की स्वीकारोक्ति सोमदेव ने स्वयं इस प्रकार की है-**"बृहत्कथायाः सारस्य संग्रहं रचयाम्यहम्"**[११] इसी संग्रह के द्वादश लम्बक के अष्टम तरंग से प्रारम्भ करके 'बेताल पच्चीसी' की पच्चीस कहानियाँ कही गई हैं, जिनमें से द्वितीय कहानी को प्रस्तुत पत्र का विषय बनाया गया है। द्वादश लम्बक के नवम तरंग में यह कहानी उल्लिखित है। यह कहानी इस विधा से कथित है जैसे कि समस्त दृश्यमान जगत् को स्थूलदर्शी केवल जड़ रूप में ही देख पाता है परन्तु सूक्ष्मदर्शी तत्त्व का दर्शन कर जड़ दिखाई देने वाले जगत् में चेतना का दर्शन करके **"सर्वस्मिन्नात्मा अस्ति"**[१२] का उद्घोष करता है। एक ही जगत् को देखने की दो दृष्टियाँ हैं। ठीक उसी प्रकार इस कहानी को भी तीन प्रकार के व्यक्तियों द्वारा तीन तलों पर देखा जा सकता है। ज्ञानी के लिए लक्ष्य है, परम रहस्य है, खोजी के लिए मार्ग है तथा अज्ञानी के लिए मनोरंजन है। कहानी इस प्रकार है- गोदावरी के तट पर प्रतिष्ठान नाम का एक स्थान है।[१३] प्राचीन समय में वहाँ विक्रमसेन का त्रिविक्रमसेन नामक एक पुत्र था, जो बड़ा यशस्वी था और इन्द्र के समान पराक्रमी था। प्रतिदिन जब वह राजा राजसभा में जाकर बैठता, तब एक भिक्षु उसकी सेवा में आता और उसे एक फल दे जाता। राजा भी प्रतिदिन वह फल लेकर, पास ही खड़े कोषाध्यक्ष के हाथ सौंप देता था। इसी तरह दश वर्ष बीत गए। एक दिन जब वह भिक्षु फल देकर राजसभा से चला गया, तब राजा ने उसे बन्दर के उस पालतू बच्चे को दिया, जो अपने रखवालों के हाथ से छूटकर किसी तरह वहाँ आ पहुँचा था। उस फल को खाते हुए बन्दर ने जब उसके बीच का हिस्सा तोड़ा तब उसके अन्दर से एक उत्तम और बहुमूल्य रत्न निकला। यह देखकर राजा ने उस रत्न को ले

---

९ साहित्यदर्पण ७/३३२-३३३

१० साहित्यदर्पण १/२

११ तरंग-१, श्लोक-३

१२ सिद्धान्तकौमुदी, सप्तम्यधिकरणे च।

१३ कथासरित्सागर, द्वादश लम्बक, राज्ञः त्रिविक्रमसेनस्य कथा, श्लोक-२१-४०, प्रतिष्ठानाभिधानोऽस्ति... अथ तां स महासत्त्व प्राप्य कृष्णचतुर्दशीम्।

Scanned with OKEN Scanner

लिया और कोषाध्यक्ष से पूछा कि मैं रोज रोज भिक्षु के द्वारा लाया हुआ जो फल तुम्हें दिया करता था, उन्हें तुमने कहाँ रखा है? यह सुनकर कोषाध्यक्ष ने डरते हुए कहा-मैं रत्न भण्डार को खोले बिना ही उन फलों को खिड़की की राह उसमें डाल दिया करता था। यदि आप आज्ञा दें, तो रत्न भण्डार को खोल कर देखूँ। ऐसा करने के बाद राजा की आज्ञा पाकर, कोषाध्यक्ष गया और पल भर बाद ही लौटकर राजा से फिर बोला- प्रभो! वे फल तो सड़ गल गए। वे मुझे वहाँ नहीं दीख पड़े-हाँ, चमकती झलमलाती रत्नराशि वहाँ अवश्य है। यह सुनकर राजा कोषाध्यक्ष पर प्रसन्न हुए। उन्होंने उन मणियों को उसे दे दिया। अगले दिन जब पहले की तरह वह भिक्षु फिर आया तब राजा ने उससे कहा। हे भिक्षु इतना धन खर्च करके तुम प्रतिदिन मुझे क्यों भेंट चढ़ाते हो? अब मैं तब तक तुम्हारा यह फल न लूँगा, जब तक तुम इसका कारण न बतलाओगे। राजा के ऐसा कहने पर भिक्षु उन्हें अलग ले गया। उसने कहा-"मुझे एक मन्त्र की साधना करनी है, जिसमें किसी वीर पुरुष की सहायता अपेक्षित है। वीरश्रेष्ठ! उस कार्य में मैं आपकी सहायता की याचना करता हूँ।'' यह सुनकर राजा ने उसे सहायता का वचन दिया। तब सन्तुष्ट होकर भिक्षु ने राजा से फिर कहा-"देव! तब मैं आगामी कृष्ण चतुर्दशी को, यहाँ के महाश्मशान में, बरगद के पेड़ के नीचे आपकी प्रतीक्षा करूँगा। आप वहीं मेरे पास आयेंगे।'' "ठीक है, मैं ऐसा ही करूँगा।'' राजा के ऐसा कहने पर भिक्षु शान्तिशील प्रसन्न होकर अपने घर चला गया।

निरन्तर दश वर्ष तक भिक्षु फल लाता रहा और राजा बिना सोचे विचारे, बिना ध्यान दिए यूँ ही लगभग बेहोशी में फल लेता रहा तथा भिक्षु जो कि धैर्य की प्रतिमूर्ति ही कहा जाएगा, प्रतिदिन दश वर्ष तक फल लाता रहा। जिस उद्देश्य से वह फल ला रहा था, दश वर्ष के लम्बे अन्तराल के बाद वानर शिशु के द्वारा फल खाते समय, उसमें से रत्न का दर्शन होने के बाद ही राजा का भिक्षु की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। जीवन प्रतिक्षण फल लाता है, पर हम सब जीवत्व रूप साधारण जीवन जीती हुई आत्माएं अनवधानता के कारण जीवन के फल को यूँ ही व्यर्थ गंवा देती हैं। परमपिता परमेश्वर द्वारा दिया हुआ मानव जीवन एक अमूल्य अवसर है, जिसे हम कहानी में वर्णित पात्र राजा विक्रमादित्य की तरह, जीवनरूपी अवसर को पहचानने में चूक जाते हैं तथा जब जीवन का अन्तिम समय आता है तो अवसर जा चुका होता है तथा पश्चात्ताप के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता। भिक्षु को जागृत एवं साहसी व्यक्ति की आवश्यकता थी। विक्रमादित्य अपनी वीरता एवं साहस के लिए प्रसिद्ध था। भिक्षु को विक्रमादित्य की वीरता में कोई संदेह नहीं था परन्तु भिक्षु को अपने कार्य में सहयोग के लिए केवल वीरता नहीं चाहिए थी, अपितु वीरता के साथ होश अर्थात् जागरण आवश्यक था क्योंकि जागृत व्यक्ति ही लौकिक एवं अलौकिक दोनों उद्देश्यों में सन्तुलन स्थापित करके अपनी यात्रा को आनन्दपूर्ण बना सकता है जैसा कि वेद में भी कहा है-

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः।।[१४]

वह भिक्षु दश वर्ष तक निरन्तर, प्रतिदिन, आशान्वित होकर राजा को फल भेंट करने का कार्य निराश हुए बिना धैर्यपूर्वक करता रहा कि किसी दिन तो विक्रमादित्य जागेगा। वास्तव में लक्ष्य चाहे लौकिक हो अथवा अलौकिक, दीर्घकाल तक श्रद्धायुक्त निरन्तरता ही सफलता का मूलमन्त्र है। जैसा कि योगदर्शनकार

१४ ऋग्वेद मण्डल-५, सूक्त-४४, मन्त्र-१४

Scanned with OKEN Scanner

पतञ्जलि ने समाधिपाद में चित्तनिरोध के उपायों का वर्णन करते हुए अभ्यास एवं वैराग्य को उपायस्वरूप कथन करते हुए अभ्यास की दृढ़ता का उपाय इस प्रकार बताया है-**"स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमि:।"**[१५]

अपने वचनानुसार सत्यसन्ध, वीरशिरोमणि, साहसी एवं जागृत राजा विक्रमादित्य कृष्ण चतुर्दशी को श्मशान में पहुँचे। श्मशान में घोर अन्धेरा था, चिताएं जल रही थीं, नरकंकाल, खोपड़ियाँ तथा हड्डियाँ चारों ओर फैली हुई थीं। बीभत्स एवं भयावह दृश्य था। राजा ने ढूँढ़ते हुए एक वृक्ष के नीचे उस भिक्षु को देखा तथा निकट जाकर कहा-"भिक्षु! मैं आ गया हूँ बताइये क्या करना है?" भिक्षु ने कहा-राजन् यदि आपने मुझ पर कृपा की है तो यहाँ से दक्षिण की ओर चले जाइए। बहुत दूर पर एक शिंशपा (अशोक शीशम) का अकेला वृक्ष मिलेगा। उस पर एक मरे हुए मनुष्य का शरीर लटक रहा है। आप उसे यहाँ ले आइए और मेरा काम पूरा कीजिए। सत्यप्रतिज्ञ राजा अमावस की अन्धेरी रात्रि में राह ढूँढ़ते हुए उस शिंशपा वृक्ष तक पहुँच गए। उस वृक्ष की डाल पर एक शव लटका हुआ था। राजा ने वृक्ष पर चढ़कर डोरी काट डाली एवं शव को जमीन पर गिरा दिया। नीचे गिरकर अचानक वह चीख उठा, जैसे उसे बड़ी पीड़ा हुई हो। राजा ने समझा कि वह मनुष्य जीवित है। उनको दया आ गई। वृक्ष से उतरकर वे उसके अंगों को सहलाने लगे। तब उस शव ने अट्टहास किया। तब राजा ने समझा कि उस पर बेताल चढ़ा हुआ है। यह जानकर जब तक वे निर्भय होकर यह कहें कि हँसते क्या हो? आओ हम लोग चलें, तब तक उन्होंने देखा कि बेताल के सहित वह शव भूमि पर नहीं है, वह फिर उसी वृक्ष पर जा लटका है। तत्पश्चात् वृक्ष पर चढ़कर उन्होंने शव को फिर नीचे उतारा कन्धे पर रखा और चुपचाप चलने लगे।[१६] ऐसी स्थिति में जब अमावस की तमसाछन्न रात्रि, श्मशान के भय से हृदय को कंपा देने वाला बीभत्स, दुर्गन्धपूर्ण स्थान किसी भी व्यक्ति को भयभीत करने के लिए पर्याप्त है। भय को द्विगुणित करने के लिए मृत शरीर रूप में दिखाई देकर, पेड़ से पृथक् करने के लिए डोरी काटने पर भयंकर अन्धकारपूर्ण रात्रि में अट्टहास करता हुआ बेताल, विक्रमादित्य के अन्दर भय का संचार तो अवश्य कर रहा होगा क्योंकि भय नामक अन्त:करण का विकार किसको भयभीत नहीं करता? भय किसी मूढ़, बेहोश, अत्यधिक मात्रा में मादक द्रव्य का सेवन कर अपने आपको विस्मृत कर देने वाले जड़ता को प्राप्त पाषाण सदृश व्यक्ति को नहीं होगा तथा जो जगत् की अनित्यता का साक्षात्कार करके द्वन्द्वातीत अवस्था को प्राप्त कर चुका है, उसे भी कोई स्थिति भयभीत नहीं कर सकती। राजा विक्रमादित्य न तो जड़ता की स्थिति में हैं तथा न ही द्वन्द्वातीन अवस्था को उपलब्ध हैं। जड़ व्यक्ति इतनी कुशलतापूर्वक राज्य का संचालन नहीं कर सकता तथा द्वन्द्वातीत अवस्था होती तो भिक्षु के पीछे श्मशान में आने की आवश्यकता ही न होती। भयभीत तो विक्रमादित्य भी अवश्य हुए होंगे परन्तु सामान्य व्यक्ति और वीर व्यक्ति में यही अन्तर होता है कि भय सामने देखकर सामान्य व्यक्ति परिस्थिति के सामने नतमस्तक होकर भाग खड़ा होता है तथा वीर व्यक्ति भययुक्त होने पर भी भागता नहीं अपितु उस भय का सामना करके उसके पार चला जाता है अर्थात् उस पर विजय प्राप्त कर लेता है। ऐसे वीर पुरुषों को भर्तृहरि ने उत्तम श्रेणी का पुरुष बताते हुए कहा है-

---

१५ योगदर्शन समाधिपाद, सूत्र-१४

१६ कथासरित्सागर, द्वादश लम्बक, अष्टम तरंग, श्लोक ४०-५८, अथ तां स महासत्त्व: प्राप्य..... यान्तं च तं शवान्तस्थो बेतालोऽसंस्थितोऽब्रवीत्। राजन्नध्वविनोदाय कथामाख्यामि ते शृणु।

Scanned with OKEN Scanner

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहताः विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजनाः न परित्यजन्ति।।[१७]

चलते हुए राजा के कन्धे पर सवार शव के अन्दर का बेताल बोला-"राजन्! राह काटने के लिए मैं तुमसे एक कथा कहता हूँ। सुनो-विक्रमादित्य के पास सुनने के सिवाय कोई उपाय भी न था, सुनना ही एकमात्र विकल्प था। "गरता क्या न करता।" बेताल ने इस प्रकार कहानी आरम्भ की-यमुना के किनारे ब्रह्मस्थल नाम का एक स्थान है, जो ब्राह्मणों को दान में मिला हुआ है। वहाँ वेदों का ज्ञाता, अग्निस्वामी नाम का एक ब्राह्मण था। उसके यहाँ मन्दारवती नाम की एक अत्यन्त रूपवती कन्या उत्पन्न हुई। जब वह कन्या युवती हुई, तब कान्यकुब्ज से तीन ब्राह्मणकुमार वहाँ आए, जो समान भाव से समस्त गुणों से अलंकृत थे। उन तीनों ने ही उसके पिता से, अपने लिए उसकी याचना की। प्राण देकर भी वे यह नहीं चाहते थे कि वह कन्या उनमें से किसी दूसरे को दी जाए किन्तु उसके पिता ने उनमें से किसी को भी अपनी कन्या नहीं दी क्योंकि उसे भय हुआ कि ऐसा करना, दूसरों के वध का कारण बनेगा और इस तरह वह कन्या अविवाहित ही रही। एक बार अचानक मन्दारवती को दाहज्वर हुआ और अविवाहित अवस्था में ही उसकी मृत्यु हो गई। कन्या के दाह संस्कार के पश्चात् उन तीन ब्राह्मण पुत्रों में से एक चिता भस्म की शय्या बनाकर भिक्षा में प्राप्त अन्न से जीवन निर्वाह करते हुए, श्मशान में ही रहने लगा। दूसरा उसकी अस्थियों को लेकर गंगा तट पर चला गया, तीसरा साधु होकर देश देशान्तर के भ्रमण के लिए निकल पड़ा। वह साधु घूमते फिरते वक्रोलक नामक गाँव में पहुँचा, वहाँ एक घर में आतिथ्य स्वीकार करते हुए, घर में विद्यमान बालक को अवज्ञा के अपराधस्वरूप आग में जलाकर मारना तथा मन्त्र शक्ति से पुनः जीवित होना देखकर अपनी मृत प्रिया को पुनः जीवित करने की आशा से आशान्वित होकर, उस मन्त्र सहित पुनः ब्रह्मस्थल ग्राम पहुँचा। उसने धूल को मन्त्र शक्ति से अभिमन्त्रित करके चिता भस्म पर डाल दिया परिणामस्वरूप ब्राह्मण कन्या पहले से भी कहीं ज्यादा कान्तियुक्त स्वर्ण सदृश देह के साथ जीवित हो उठी। उसको जीवित देखकर वे तीनों कामपीड़ित होकर कन्या को प्राप्त करने के लिए झगड़ने लगे। सबके अपने तर्क थे, एक का कहना था कि मैंने इसे मन्त्र शक्ति से जीवित किया है, अतः यह मुझे मिलनी चाहिए। दूसरे ने कहा कि इसका जीवन तीर्थ बल से प्राप्त हुआ है जिसके लिए मैंने तपस्या की है, अतः यह मुझे मिलनी चाहिए। तीसरे ने कहा कि इसकी भस्म को मैंने तपस्या करते हुए सुरक्षित रखा है, अतः यह मुझे मिलनी चाहिए। बेताल ने कहा-राजन्! उनके इस विवाद का निर्णय करके तुम ठीक ठीक बताओ कि उसे किसकी स्त्री होना चाहिए? यदि तुम जानते हुए भी न बतलाओगे तो तुम्हारा माथा फट जाएगा। उसके ऐसा कहने पर राजा उससे बोला-"जिसने कष्ट उठाकर मन्त्र बल से उसे जीवित किया वह पिता समान है, जो उसकी अस्थियाँ गंगा में डाल आया वह पुत्र समान है। असली प्रेमी तो वही है, जो चिता की भस्म रमाये बैठा था अतः वह स्त्री उसी की

---

१७ भर्तृहरि नीतिशतक, श्लोक-२७

Scanned with OKEN Scanner

होनी चाहिए।'' अपना मौन तोड़कर विक्रमादित्य ने ज्यों ही यह बात कही बेताल तुरन्त उसके कन्धे से वापिस पेड़ पर चला गया।[१८]

इसी प्रकार चैबीस कहानियाँ चलती रहीं एवं प्रत्येक बार विक्रमादित्य के मन में, कहानी के माध्यम से बेताल द्वारा पृष्ट प्रश्नों के उत्तर आते रहे एवं बेताल पुनः पुनः वृक्ष पर जाकर लटकता रहा। विक्रमादित्य शान्त एवं शून्यरूप मौन की अवस्था से विचलित होकर प्रत्येक बार अपने लक्ष्य अर्थात् बेताल को भिक्षु तक पहुँचाने के कार्य में असफल होता रहा। हम सबकी भी यही स्थिति है। हमारा भी प्रत्येक जीवन बेताल की कहानी ही तो है। जीवन की जो कहानी प्रारब्ध रूप में प्राप्त हुई है, उसमें जो अपने प्रारब्ध को प्रतिक्रिया किए बिना शान्तभाव से भोगकर शून्यावस्था को प्राप्त हो जाता है अर्थात् कहानी में लिप्त हुए बिना, पानी में कमल की भांति अछूता रह पाता है, वह जन्म-मरण रूपी कहानियों के चक्र से बाहर होकर अपने परमात्मरूपी लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो जाता है। जो व्यक्ति कहानी में आसक्त हो जाता है, वह उस आसक्ति के परिणामस्वरूप पुनः पुनः इस चक्र में गोल-गोल घूमता रहता है तथा उसे चक्र से बाहर निकलने का कोई उपाय नहीं सूझता। इन कहानियों के माध्यम से जहाँ सामान्य जनों का मनोरञ्जन होता है, वहीं खोजी के लिए बहुत सरल एवं सरस ढंग से लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग भी बताया है। मनुष्य सदैव विचारों की भीड़ में घिरा हुआ अपने लक्ष्य से दूर से दूरतर एवं दूरतम ही बना रहता है। विचार सदैव अधिकतर भूत अथवा भविष्य से संबन्धित ही होते हैं। भूत हो चुका, जिसे परिवर्तित नहीं किया जा सकता। भूत में भी जो कष्टपूर्ण रहा है, उसे ही हम पुनः पुनः स्मृतिपथ पर लाकर वासना या संस्कार रूप में परिणत कर लेते हैं तथा अपने कष्ट को पुनरुज्जीवित करते रहते हैं। भविष्य से सम्बन्धित विचार अधिकतर काल्पनिक होते हैं। चिन्ताजनक कल्पनाएं करते-करते व्यर्थ में ऊर्जा का क्षय करते हैं जबकि जीवन का मतलब तो वर्तमान है तथा वर्तमान भी आसक्तिमुक्त शून्यवत हो तो ही जीवन सार्थक एवं सुखमय हो सकता है। इसी का नाम योग अथवा ध्यान है। निर्विषय अर्थात् शून्य हो जाना ही तो ध्यान है। जैसा कि सांख्यदर्शन में ध्यान की परिभाषा देते हुए कहा-**"ध्यानं निर्विषयं मनः।''**[१९] बेताल की कहानियाँ भी यही तथ्य समझाने का प्रयास कर रही हैं कि कहानी सुनते हुए भी उसमें लिप्त न होकर ऐसे अछूते रह जाओ कि उसका कोई प्रभाव व तद्विषयक कोई विचार ही न उठे। यही तो योगदर्शन की असंप्रज्ञात समाधि है।[२०] यही तो गीता निष्काम कर्म है।[२१] इसी शून्य अवस्था को प्राप्त करने के लिए सारा प्रपञ्च है। यह संसार तो एक प्रयोगाशाला है। जो आत्माएं इस शून्य अर्थात् असंग अवस्था को प्राप्त कर लेती हैं, वे परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाती हैं परिणामस्वरूप संसार की प्रयोगशाला से हटा ली जाती हैं। जो उक्त अवस्था को प्राप्त नहीं कर पातीं वे पुनः पुनः प्रयोगशाला में भेजी जाती रहती हैं। धन्य हैं भारतीय मनीषा जिन्होंने साधारण सी दिखाई देने वाली कहानियों के माध्यम से जीवन के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित कर, सामान्य जनमानस को, जो कि कहीं

---

१८ कथासरित्सागर, द्वादश-लम्बक, नवम-तरंग, अतस्तव विनोदाय कथयामि कथां शृणु.... एवं नृपात् त्रिविक्रमसेनात् श्रुत्वैव मुक्तमौनात्सः तस्य स्कन्धात् अगमवेतालोऽतर्कितः स्वपदम्।।

१९ सांख्यदर्शन ६/२५

२० योगदर्शन, समाधिपाद, सूत्र-१८, विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः।

२१ गीता २.४७, कर्मण्येवाधिकारस्ते..... मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।

Scanned with OKEN Scanner

शास्त्रीय गुत्थियों में उलझे बिना भवसागर के पार जाने का मार्ग प्रशस्त किया है। प्रभु सभी जीवात्माओं पर कृपा करें, सबको सद्बुद्धि दें कि अपने प्राचीन साहित्य में विद्यमान जीवन सूत्रों पर गम्भीरतापूर्वक दृष्टिपात करके, आचरण में लाने में समर्थ होकर जीवन के उच्चतम सोपान आनन्द, तृप्ति एवं शान्ति का अनुभव कर सकें। विस्तारवादी नीतियों के कारण एक दूसरे देश को युद्ध की विभीषिका में धकेलकर मानव जीवन को अशान्त करने वाले इस समय में प्राचीन भारतीय साहित्य में निहित ये शान्ति एवं सहअस्तित्व के सूत्र ही एकमात्र विश्व का पथ-प्रदर्शन करने में समर्थ हैं। हमारे मनीषियों द्वारा उल्लिखित इन जीवन मूल्यों की जितनी सार्थकता इनके लेखन के समय थी, उससे कहीं अधिक उनकी आवश्यकता आज के मानव के लिए दिखाई पड़ती है।

Scanned with OKEN Scanner

Impact Factor : 7.001

ISSN : 2395 - 5104

शब्दार्णव Shabdarnav

International Peer Reviewed Refereed Journal of Multidisciplinary Research

Year 9 Vol. 17, Part-IV January-June, 2023

Scientific Research
Educational Research
Technological Research
Literary Research
Behavioral Research

Editor in Chief
DR. RAMKESHWAR TIWARI

Executive Editors
DR. KUMAR MRITUNJAY RAKESH
MR. RAGHWENDRA PANDEY

Published by
SAMNVAY FOUNDATION
Mujaffarpur, Bihar

- गढ़वाल क्षेत्र के पाण्डव नृत्य में ढोल दमाऊं का योगदान 62–64
  राजदीप लखेड़ा व डॉ० ऐश्वर्या भट्ट
- समकालीन हिन्दी प्रगतिशील कवियों में जनतांत्रिक मूल्य 65–68
  रामसिंह राजपूत व डॉ० संजय सक्सेना
- खण्डकाव्य का स्वरूप 69–70
  रमेश कुमार यादव
- टेलीविजन में प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों में पार्श्व संगीत का प्रयोग 71–73
  डॉ० विनायक शर्मा व शैली पारीक
- मध्यकालीन आयुर्विज्ञान में आयुर्वेद 74–77
  शशी कुमार केशरी व डॉ० उदय कुमार
- मेवात क्षेत्र के लोक महाकाव्य : पांडून के कड़ों के गायन में प्रयुक्त वाद्य 78–81
  सुमनलता सैन व प्रो. सत्यवती शर्मा
- थेरवादी बौद्ध परम्परा में अष्टांग ध्यान साधना : एक अध्ययन 82–84
  डॉ० देवानन्द चौधरी
- महाकवि क्षेमेन्द्र : उपलब्ध और अनुपलब्ध कृतियाँ 85–87
  डॉ० क्षमा कुमारी
- महर्षि दयानंद और भारतीय राष्ट्रवाद 88–91
  डॉ० सचिन कुमार
- वेदान्तशब्दनिर्वचनं विभिन्नाः सम्प्रदायाश्च 92–95
  डॉ० श्वेता बरनवालः
- भक्ति–परम्परा में भक्त उपासिकाएँ 96–99
  डॉ० वन्दना रावल
- लैंगिक समानता एवं महिला सशक्तिकरण : सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन 100–103
  कुमारी पिंकी
- उपनिषदों में प्रतिपादित आनन्दतत्त्व 104–106
  रत्नेश कुमार यादव व डॉ० प्रमा द्विवेदी
- भारतीय संविधान के निर्माण में नारी की भूमिका 107–110
  सीमा कुशवाह व डॉ० सुषमा अग्रवाल
- मुण्डा जनजाति की महिलाओं के पारिवारिक जीवन में बदलते प्रतिमानों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण (झारखण्ड) ओरमांझी प्रखण्ड के सन्दर्भ में 111–114
  सुमति कुमारी मुण्डा
- वर्तमान समय में मलिन बस्तियों में महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए सरकार द्वारा चलायी गयी योजनाओं का एक अध्ययन (जनपद नैनीताल के विशेष सन्दर्भ में) 115–118
  मोहित जोशी व डॉ० जे०पी० त्यागी
- भारत की आंतरिक सुरक्षा के समक्ष चुनौती : नक्सलवाद 119–122
  अवधेश कुमार जाजोरिया
- भारत नेपाल द्विपक्षीय सम्बन्ध : सुरक्षा के विशेष सन्दर्भ में 123–125
  दीप कुमार श्रीवास्तव

Shabdarnav : *An International Peer Reviewed Refereed Journal of Multidisciplinary Research* | ISSN - 2395-5104
वर्ष–9, अंक–17, भाग–4, जनवरी–जून, 2023 | Impact Factor : 7.001

महर्षि दयानंद और भारतीय राष्ट्रवाद

डॉ० सचिन कुमार*

महर्षि दयानंद सरस्वती का आविर्भाव भारतीय धरातल पर एक ऐसे समय में हुआ था जब भारत परतन्त्रता की घनघोर घटाओं से घिरा हुआ था। जब जनमानस की सात्विक चेतना पर धार्मिक आडम्बर और पाखण्ड की परतें जम रही थी। जब भारतीय मनीषा की वैचारिक और सांस्कृतिक निष्ठाएं पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव में पाश्विक प्रवृत्तियों की साक्षी देने लगी थी। जब भारतीय ज्ञानमण्डल के दिव्य सूर्य को अरांख्य निराशाओं के राहु और केतु ग्रस रहे थे। स्त्रियों को शिक्षा से दूर रखकर भारतीय समाज और राष्ट्र को पङ्गु बनाया जा रहा था। अनेक कुठाराघातों और क्रूर थपेड़ों से भारतीय जनचेतना मानों हीन और मूर्छित सी हो गई थी। ऐसे कठिन समय में भारत देश को आशा और नवप्रभात के स्पर्श से आशान्वित करने वाला दयानन्द रूपी दिव्य भास्कर गुरु विरजानन्द के गर्भ में गहन तपस्याओं के शक्तिपुञ्ज से सशक्त होकर आया था।

भारत राष्ट्र के पुनर्जागरण काल में स्वामी दयानन्द का आगमन अनेक आशावादी रश्मियों का प्रवाह लेकर आया था। स्वामी दयानन्द ने भारत राष्ट्र की प्रसुप्त चेतना को जागृत करने में अहम भूमिका निभाई थी, उन्होंने मत, मजहब, पंथ, पाखण्ड व आडम्बर की विभिषिका में दिग्भ्रमिक कोटि–कोटि जनों को सत्य–सनातन वैदिक–धर्म की राह दिखाकर उनका मार्ग प्रशस्त किया था। उन्होंने भारत देश में व्याप्त अनेक सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों का प्रबल विरोध व खण्डन करके देश में सामाजिक जागृति की ज्योति जलाई। उन्होंने धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से भारत को कमजोर करने वाले मिथ्या–विचारों और आडम्बरों पर सशक्त वैचारिक प्रहार कर राष्ट्रवाद की अनोखी मिशाल प्रस्तुत की। स्वामी दयानन्द ने इस्लाम, ईसाइयत और अन्य अनेक मत–मजहबों की धार्मिक दुर्बलताओं और मिथ्या मान्यताओं पर बौद्धिक प्रकार कर वेद–सम्मत वैदिक आचरण व मूल्यों की श्रेष्ठता को स्थापित किया।

महर्षि स्वामी दयानन्द एक आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चिंतक होने के साथ–साथ सामाजिक एवं धार्मिक सुधारक भी थे। उनके चिंतन की पृष्ठभूमि पूर्णतः राजनीतिक नहीं है परन्तु धार्मिक व सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उनका सम्पूर्ण चिन्तन राजनीतिक आयामों को स्पर्श करती ही है। सामाजिक व धार्मिक सुधारों की दिशा में स्वामी जी का क्षेत्र पाखण्ड–खण्डन, स्वदेशी प्रचार, स्त्रीशिक्षा, जातिप्रथा, अस्पृश्यता, गुरुकुल–शिक्षा, दलितोद्धार, वर्णव्यवस्था व अनेक ऐसे रूपों में विस्तृत रहा है, जिससे राष्ट्रवाद सशक्त होकर जनमानस में प्रबल जागृति का कारण बना है। वैसे तो महर्षि दयानन्द द्वारा राष्ट्र उन्नयन हेतु अनेक कार्य किए गए हैं, परन्तु इस विश्लेषण में हम उनके द्वारा समर्थित कुछ राष्ट्रवाद केन्द्रित बिन्दुओं पर चर्चा कर रहे हैं–

धार्मिक जागृति– महर्षि दयानन्द यह मानते थे कि भारत जैसे धार्मिक राष्ट्र की उन्नति में धर्म का विकृत स्वरूप ही सबसे बड़ी बाधा है। इसीलिए सर्वप्रथम उन्होंने राष्ट्रवाद के मार्ग में सबसे पहला आघात धर्म के विकृत स्वरूप पर ही किया और लोगों को धर्म की यथार्थ वेदाधारित व्याख्या कर धर्म का वास्तविक स्वरूप समझाया। वे जानते थे कि जब तक समाज से धार्मिक बुराइयों को नहीं हटाया जाएगा तब तक भारतीयों में अपनी संस्कृति और वेदादि सत्यशास्त्रों के प्रति गहरी निष्ठा नहीं हो सकेगी। उन्होंने विविध पंथों, पौराणिक सम्प्रदायों, अंधविश्वासों और पाखण्डों तथा आडम्बरों द्वारा विकृत किए गए धर्म की वेद–सम्मत व्याख्या प्रस्तुत करके देश को यथार्थ धर्म और आध्यात्म का मार्ग दिखाया। इसीलिए विदेशी विचारकों ने उन्हे **"भारतीय आध्यात्मिक जागृति का मार्टिन लूथर"** कहा था।[1] महर्षि स्वामी दयानंद ने इस धार्मिक जागृति के राष्ट्रवाद–विषयक क्रम में सत्यार्थ प्रकाश के 11, 12, 13, 14 समुल्लासों में आर्यावर्त में प्रचलित और राष्ट्र की धार्मिक चेतना को जर्जरित करने वाले मत–मतान्तरों का खण्डन–मण्डन किया। धार्मिक रूप से मूर्च्छित राष्ट्र को जागृत करने के लिए उन्होंने चारवाक, बौद्ध, जैन, ईसाई और मुसलमानों के मतों का भी खण्डन–मण्डन किया। विविध मत–मतान्तरों की विकृत जडों को उखाड़ने में उनका मुख्य प्रयोजन राष्ट्र को वेद–सम्मत सत्य मार्ग पर लाना ही था। उन्होंने अपने प्रयोजन को सत्यार्थ में स्पष्टतः लिखा कि "मेरा मुख्य प्रयोजन सत्य–सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रयोग समझा है।"[2]

*सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज, नई दिल्ली।